THE ECONOMIC TIMES

Date: 24-01-18

At Davos, PM Narendra Modi makes the global local

ET Editorials

The expectation that 1.3-billion-strong India will be one of the key drivers of global economic growth and prosperity, and its leader will play a key role in shaping global options in politics and economics, is what made Prime Minister Narendra Modi a big draw at the plenary session of the Davos summit this year.

Modi did not disappoint his audience, expounding views that took in the global big picture, connected them to India's priorities, and left the audience with the conviction that India, at least, is moving in the right direction. This is a welcome result for the first speech by a prime minister of India at the World Economic Forum in two decades.Modi spoke of climate change, protectionism and terror as the three big challenges to humanity's interconnected existence. India's concern on climate change is music to the ears of the developed world, especially after US President Trump's retrograde moves on the subject. Similar is the effect when the threat to an open, rules-based world economy that the Trumpian approach of America First poses finds resistance in India's stand against protectionism, after Chinese President Xi Jinping made support for globalisation his main theme at Davos last year.Again, terror is both a global as well as a local problem that the world today appreciates as a serious challenge. By linking it to the continuum of intelligent policy that promotes vigorous economic activity of the sort that would combat climate change as well as boost coordinated global growth, Modi presented convergence of India's priorities with those of the world's enlightened elites.

While this is most welcome, India would also be under greater pressure to live up to the expectations aroused by the grand vision outlined at Davos. The steady rise in import tariffs that India has been effecting of late, on things ranging from steel and mobile phones to solar panels, sporadic outbursts of vigilante violence that feeds alienation of the kind terror feeds on, and state governments reneging on power purchase agreements with renewable energy producers are out of sync with such a vision.

THE TIMES OF INDIA

Date: 24-01-18

Discovery of Asia

India and Asean should join to establish the world's most dynamic economic zone

TOI Editorials

Assembling all 10 heads of state or government of the Association of South East Asian Nations (Asean) in Delhi, as chief guests for the upcoming Republic Day parade, is undoubtedly a big push for India's Act East policy. Asean leaders will also be attending the Indo-Asean Commemorative Summit marking 25 years of their dialogue partnership. There's no denying what lends urgency to this confluence: America withdrawing from the region and China muscling in. Some parallels between Asean and the European Union (EU) are interesting in this regard. European nations chose to drop their differences and come together because of the experience of two world wars. Likewise, Asean nations were initially brought together by the fear of rising communist insurgencies in their neighbourhood in the 1960s.A similar situation looms today, as China's meteoric economic rise is transforming into Chinese assertiveness on territorial disputes in the region, together with other ways of undermining a multilateral rules-based order. As a result, despite Asean's deep economic engagements with China, the bloc doesn't want to put all its eggs in Beijing's basket. On India's part, boosting ties with Asean has multiple benefits. Not only is greater connectivity with the bloc crucial to developing India's northeast region, greater Asean investments into India can result in a multiplier effect across economic sectors.

Asean nations like Vietnam are well-integrated with global value chains. India can tap into these to give its own manufacturing sector a boost. Similarly, facilitating greater Indian service sector exports to Asean as well as freer movement of people is imperative. The services-manufacturing combo can lead to a balanced trade and investment relationship by drawing on each side's inherent strengths.There's also a case for boosting tourism cooperation. Many Indian tourists have already experienced high-quality tourism facilities in Asean nations. The same could be replicated for Asean and other tourists to India by inviting tourism and hospitality companies from the bloc to invest in popular circuits, such as the one centred on Bodh Gaya. There's also scope for enhancing security cooperation between India and Asean, all of which could be used to moot the next big idea: Indian membership in Asean, which would become one of the world's most dynamic economic zones. Asean favours a looser union structure than EU while India joining up would make it as potent as EU; making its chances of future success correspondingly greater.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 24-01-18

दावोस के संदेश

संपादकीय

दावोस में आयोजित विश्व आर्थिक मंच की सालाना बैठक में अपने संबोधन में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने तीन मुख्य चुनौतियों का जिक्र किया जो इस समय दुनिया के सामने हैं। पहली आतंकवाद, दूसरी जलवायु परिवर्तन और तीसरी संरक्षणवाद। मोदी बीते दो दशक में दावोस में संबोधन करने वाले पहले भारतीय प्रधानमंत्री हैं। उनके वक्तव्य की बहुत उत्सुकता से प्रतीक्षा थी। वह संभवत: अब तक के सबसे बड़े भारतीय प्रतिनिधिमंडल के साथ दावोस पहुंचे। चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग ने भी गत वर्ष ऐसा ही संबोधन दिया था। उन्होंने अपने भाषण में वैश्वीकरण का जबरदस्त तरीके से बचाव किया था। यह वह दौर था जब डॉनल्ड ट्रंप ने अमेरिकी राष्ट्रपति की गद्दी संभाल ली थी और वैश्विक खुलेपन और एकीकरण के भविष्य को लेकर शंकाएं जताई जाने लगी थीं। मोदी ने भी वैसी ही भूमिका निभाई और कहा कि वैश्वीकरण से उत्पन्न तनावों का उत्तर आत्मकेंद्रित होना नहीं है। उन्होंने नए तरह के टैरिफ और गैर टैरिफ वाली बाधाओं और द्विपक्षीय और बहुपक्षीय समझौतों और वार्ताओं में आ रहे ठहराव का जिक्र किया। आतंकवाद और जलवायु परिवर्तन पर उन्होंने मजबूत वैश्विक प्रतिक्रिया के प्रति भारत की प्रतिबद्घता दोहराई।

उन्होंने स्पष्ट किया कि भारतीय मूल्य लालच के लिए प्रकृति के दोहन का समर्थन नहीं करते हैं और 'अच्छा आतंकवाद' जैसी कोई चीज नहीं होती।उन्होंने कहा कि वैश्वीकरण के खिलाफ उठ रही आवाजें चिंतित करने वाली हैं। संकेतों के मामले में प्रधानमंत्री का भाषण खासा जटिल था। उनके भाषण से बाहरी तौर पर यह संकेत निकला कि भारत वैश्वीकरण के पक्ष में है। आंतरिक तौर पर उससे यह संकेत निकला कि सरकार की प्राथमिकताएं अभी भी सुधार और वृद्घि हैं। ये संकेत स्वागतयोग्य हैं लेकिन इन्हें अब क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। दावोस में मोदी का जबरदस्त स्वागत हुआ। यह वैश्विक स्तर पर भारत के बढ़ते कद का प्रतीक है लेकिन साथ ही यह भविष्य में बेहतर आर्थिक प्रदर्शन की आकांक्षाओं का भी प्रतीक है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने चालू वर्ष के दौरान भारत की आर्थिक वृद्घि संबंधी अनुमान हाल ही में बढ़ाकर 7.4 फीसदी कर दिए हैं।

अन्य वृहद आर्थिक संकेतकों की बात करें तो उनमें भी उम्मीद की किरण दिखाई देती है। फिर चाहे बात शेयर बाजार से हुई जबरदस्त कमाई की हो या डेट बाजार में भारी मात्रा में विदेशी पूंजी की आवक की। या फिर अंतरराष्ट्रीय क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों द्वारा भारत की सॉवरिन रेटिंग में सुधार की। कह सकते हैं कि भारत अब नीतिगत गलतियों और प्रशासनिक सुस्ती के कारण आए वृद्घि में धीमेपन की छाया से उभरकर सामने आ रहा है। यह बात भी ध्यान देने लायक है कि मोदी को लोगों ने ध्यानपूर्वक सुना।

ऐसा शायद इसलिए क्योंकि भविष्य में देश की वृद्घि और समृद्घि को लेकर तमाम आकांक्षाएं दुनिया के मन में हैं। इससे आने वाले आम बजट पर भी दबाव बढ़ता है। उसे अधिक समझदारी और अग्रसोची ढंग से तैयार करना होगा बजाय कि लोकलुभावनवाद के। प्रधानमंत्री ने मीडिया को दिए अपने हालिया साक्षात्कार में संकेत दिया है कि यह उनकी भी प्राथमिकता है। बजट पेश होने में एक पखवाड़े से भी कम वक्त बचा है। इस दौरान मोदी ने कहा कि यह बात मिथक है कि लोग तमाम रियायतें और छूट चाहते हैं। उन्होंने कहा कि बजट हो या नहीं उनकी सरकार विकास के एजेंडे पर चलती रहेगी। अब यह देखने वाली बात होगी कि सरकार क्या करती है

क्योंकि चुनावी बजट से लोगों को बहुत अधिक उम्मीदें रहती हैं। सरकार को दावोस में दिए अपने संदेश और हालिया साक्षात्कार में कही बातों पर कायम रहना होगा। राजकोषीय समझदारी, व्यापारिक खुलापन, जलवायु परिवर्तन और स्थायी विकास जैसे वैश्विक लक्ष्यों के प्रति प्रतिबद्घता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। तभी भारत को विश्व स्तर पर प्रमुख भूमिका निभाने का अवसर मिलेगा।

दैनिक भास्कर

Date: 24-01-18

डिजिटल केवाईसी के बाद दस्तावेजों की जरूरत न रहे

क्रिप्टोकरेंसी और उसके व्यापार के लिए नीति बनाएं

पिछले कुछ वक्त से सरकार के स्तर पर यह विचार रहा है कि डिजिटल पेमेंट का ढांचा बनाने की रफ्तार तेज करने के लिए एक समर्पित फंड बनाया जाए। यह उस व्यापक रणनीति का ही हिस्सा होगा, जिसके तहत नकदी आधारित लेन-देन में कटौती करने और छोटे व्यापारियों को इलेक्ट्रॉनिक पेमेंट इकोसिस्टम पर आने के लिए प्रोत्साहित किया जाना है। उम्मीद है कि बजट में इसकी घोषणा होगी। यदि ऐसा हुआ तो यह एक्सपर्ट पेनल की इस आशय की सिफारिशों के अनुरूप ही होगा।

इसके अलावा भी डिजिटल पेमेंट के सेक्टर में कई कदम उठाना समय की मांग है: डिजिटल प्रक्रिया और भौतिक प्रक्रिया का दोहराव रोकना : पिछले कुछ वर्षों में सरकार और फाइनेंशिल सेक्टर के रेग्यूलेटरों ने गंभीर साहसी कदम उठाए हैं और आधार ई-केवाईसी, डिजिटल सिग्नेचर इत्यादि डिजिटल प्रक्रिया को अनुमति दी है। लेकिन, विभिन्न नियमों के तहत अब भी एक साल के भीतर केवाईसी के लिए भौतिक दस्तावेज ले जाना अनिवार्य है। इसी तरह कुछ नियम और कानूनी अनिवार्यताएं ऐसी हैं कि भौतिक रूप में विभिन्न दस्तावेज पेश करना जरूरी हो जाता है। ऐसे में व्यक्तिगत रूप से भौतिक दस्तावेज रखना अपरिहार्य है। अब वक्त आ गया है कि सरकार और रेग्यूलेटर दोनों डिजिटल प्रक्रिया में शत-प्रतिशत विश्वास दिखाएं और एक साल के भीतर भौतिक दस्तावेज पेश करने की अतिरिक्त आवश्यकता बिल्कुल न रहे।डिजिटल पेमेंट उपकरणों और नकदी में समानता ताकि केशलेस को अधिक तेजी से अपनाया जा सके : हमारे देश में व्यापारियों अथवा भुगतान करने वाले के लिए 49999 रुपए तक के सारे वाणिज्यिक लेने-देन बिना किसी प्रक्रिया, केवाईसी या अन्य किसी औपचारिकता के करने की मंजूरी है। जबकि सारे डिजिटल पेमेंट यूज़र ट्रांजेक्शन बहुत छोटे मूल्य के ही क्यों न हो पर उसके लिए व्यापक केवाईसी और अन्य प्रक्रियाओं की जरूरत होती है।

50,000 रुपए के सारे लेने-देन वालेट जैसे डिजिटल पेमेंट ऑप्शन मुक्त रूप से सबके लिए और न्यूनतम प्रक्रिया के साथ उपलब्ध होने चाहिए अथवा 10,000 रुपए के ऊपर के नकदी लेन-देन पर भी केवाईसी जरूरी होना चाहिए। सरकार को डिजिटल पेमेंट स्वीकार करने वाले व्यापारियों को ओवरऑल इंक्रिमेंटल वैल्यू पर टैक्स में राहत देने पर विचार करना चाहिए खासतौर पर जिनका वार्षिक टर्नओवर 20 लाख रुपए हो जैसा कि आरबीआई एमडीआर गाइडलाइन में प्रस्तावित है। सभी व्यापारियों को 2000 रुपए से नीचे के नि:शुल्क लेन-देन की सुविधा का लाभ केवल बड़े व्यापारियों को मिलेगा और यह करदाता के पैसे का श्रेष्ठतम उपयोग नहीं है। ज्यादातर पांच सितारा कॉफी शॉप के लेन-देन 2000 रुपए तक के ही होते हैं और उन्हें फ्री ट्रांजेक्शन सपोर्ट के लिए किसी सरकारी सब्सिडी की जरूरत नहीं हो सकती है।व्यक्तिगत कर छूट की सीमा : वित्तीय सेवाओं संबंधी निवेश या लागत से जुड़ी व्यक्तिगत कर छूट में यात्रा और

मकान किराये में छूट का लाभ मिला है। इसी तरह अब वक्त अ गया है कि जीवन बीमा, मेडिकल बीमा, व्यक्तिगत श्रेणी वाली वैल्यू के म्यूचुअल फंड का कुल यूज़र बेस बढ़ाने और बैंकिंग से आगे वित्तीय समावेश को बढ़ावा देने के लिए खर्च व निवेश के बढ़ते मूल्य के लिए छूट का प्रावधान करना होगा। इससे हाउसिंग सेक्टर से जुड़े फायदे व्यापक मध्यवर्ग तक पहुंचेंगे और किफायती आवास की श्रेणी में एकाधिक फायदे होंगे।

डिजिटल पेमेंट पर एक्सपर्ट समिति की सिफारिशों पर अपडेट की समीक्षा और उसे अमल में लाने की रफ्तार को तेजी देना भी जरूरी है। इस समिति की रिपोर्ट के संबंध में पिछले बजट में की गई घोषणाएं अभी पूरी तरह अमल में लाई जानी हैं।आखिर में, सरकार को लीगल टेंडर अथवा सरकार समर्थित डिजिटल करेंसी पर गंभीर दृष्टिकोण अपनाना होगा ताकि डिजिटल भारत में हम डिजिटल रुपए के साथ प्रवेश करे। इसी तरह निजी स्तर पर जारी की गई डिजिटल क्रिप्टोकरेंसी और उनके व्यापार के लिए उचित नीतियां और तत्काल नियामक ढांचा निर्मित करने की जरूरत है। इसके अभाव में ग्राहकों के साथ धोखाधड़ी हो सकती है और जो कानून के मुताबिक काम कर रहे हैं उन्हें पूंजी और निवेश खोने का जोखिम रहेगा। वक्त आ गया है कि सरकार इसे गंभीरता से लेकर उचित कानून बनाए। जहां तक क्रिप्टो करेंसी ट्रेडिंग की बात है, सेबी इस बाजार और इससे संबंधित जोखिम को अच्छी तरह मैनेज कर सकता है। लीगल टेंडर करेंसी के लिए वित्त मंत्रालय की सहायता से आरबीआई नेतृत्व संभाल सकता है।

Date: 24-01-18

स्वतंत्र न्यायपालिका लोकतंत्र की अनिवार्य आवश्यकता

दस दिनों पहले देश के मुख्य न्यायाधीश के विरुद्ध प्रेस कॉन्फ्रेंस करने वाले न्यायमूर्ति जे. चेलमेश्वर ने एक पुस्तक विमोचन के कार्यक्रम में न्यायपालिका की आज़ादी की याद दिलाकर यह बताने की कोशिश की है कि वे अपने दृष्टिकोण पर कायम हैं। उन्होंने जिन दो बातों की ओर संकेत दिया है उनमें से एक है उदार लोकतंत्र में न्यायपालिका का स्थान और दूसरी बात है लंबित मुकदमों के बढ़ते बोझ का खतरा। उन्होंने देश के नागरिकों को आगाह किया है कि अगर स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका नहीं रहेगी तो देश में उदार लोकतंत्र नहीं रहेगा। संयोग से दूसरे ही दिन पद्मावत और हादिया के मामलों में सुप्रीम कोर्ट ने अपनी निर्भीकता और निष्पक्षता प्रदर्शित करके यह संदेश दे दिया है। उनकी दूसरी बात भी पहली बात से ही जुड़ी हुई है और उसका मतलब है कि न्यायपालिका की निष्पक्षता और स्वतंत्रता को खतरा लंबित मुकदमों से है। अगर 50 से 60,000 मुकदमे लंबित पड़े रहेंगे तो सुप्रीम कोर्ट की प्रासंगिकता सवालों के घेरे में होगी। उनका यह भी कहना था कि लोगों को लगातार इस संस्था पर निगरानी रखनी चाहिए कि वह कैसे काम कर रही है। न्यायमूर्ति चेलमेश्वर की बात ऐसे समय आ रही है जब उनकी तरफ से प्रेस कांफ्रेंस के बाद संस्था की साख दांव पर लगी हुई है। हालांकि कार्यपालिका ने स्पष्ट तौर पर कहा है कि यह मामला न्यायपालिका का आंतरिक है और इसमें बाहरी हस्तक्षेप के बिना उन्हें ही निपटाने देना चाहिए। लेकिन, आशंका होती है कि सुप्रीम कोर्ट में न्यायमूर्तियों की नियुक्ति के लिए बनी कोलेजियम प्रणाली को निशाने पर लिया जाएगा। इसे सुप्रीम कोर्ट ने अपनी स्वायत्तता के लिए ईजाद किया है। न्यायालय के समक्ष चुनौती सिर्फ धारणागत ही नहीं व्यावहारिक भी है। संविधान साफ कहता है कि कार्यपालिका न्यायपालिका के फैसले का सम्मान करेगी लेकिन कई मामलों में इसके विपरीत आचरण देखा गया है। कार्यपालिका अपने मकसद को साधने के लिए या तो बार-बार अपील करती है या फिर राज्येतर संगठनों द्वारा ऐसे दबाव पैदा करती है कि अदालत लाचार हो जाए। इसके अलावा मामला नागरिकों के भीतर वह लोकतांत्रिक भावना पैदा किए जाने का भी है जिसके तहत अदालत के निर्णय का सम्मान होना जरूरी है। अगर वह भावना कमजोर होगी तो अदालत के साथ लोकतंत्र भी कमजोर होगा।अपने भीतर का भक्त जरूर बचाकर रखें

वैसे तो ऐसे दृश्य देखने को कम मिलते हैं कि **नदी** किनारे कोई मछलीमार बैठा मछलियों को फंसा रहा हो। यदि कहीं ऐसा देखने में आए भी तो ध्यान से देखिएगा कि मछलीमार **की** डोरी में एक कांटा लगा होता है, जिस पर वह आटा लपेटता है। मछली आटा खाने आती है और कांटे में फंस जाती है। इसी बात को आध्यात्मिक दृष्टि से देखिए। जब हम भक्ति कर रहे होते हैं, एक धार्मिक व्यक्ति होते हैं तो कामना के कांटे में फंस गए होते हैं। इसे यूं समझें कि भक्ति आटा है और उसके पीछे का कांटा हमारी कामना या वासना है। ऐसे में हम जैसे ही अपनी भक्ति को लेने गए, उसके पीछे लगे कामना के कांटे के कारण भक्ति तो प्राप्त कर नहीं पाते, उल्टे वासनाओं में उलझ जाते हैं। इसीलिए शास्त्रों ने एक शब्द **दिया** है- 'निष्काम भक्ति'। निष्काम भक्ति का मतलब है आप एक ऐसा कर्म कर रहे हैं, जिसका परिणाम ईश्वर पर छोड़ चुके हैं। कर आप रहे हैं, करवा कोई और रहा है, यह भाव निष्काम **भक्ति** से आता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि अपने अधिकार को भुला दें, छोड़ दें। निष्कामता का अर्थ है अपने कर्मफल के प्रति **आसक्ति** न रखें। निष्कामता बताती है कि असफल भी रहें तो शांति को नहीं खोते हुए प्रयास की ताकत को और बढ़ा देना है। एक **भक्त** जब कोई काम करता है तो अपने आपको पूरा झोंक देता है। एकाग्रता उसका गहना होती है। इसलिए आप कोई भी व्यक्ति हों, अपने भीतर का भक्त जरूर बचाकर रखिएगा।

जनसत्ता

Date: 23-01-18

हिंसा के पाठ

संपादकीय

अभी तक तो यही पढ़ने-सुनने में आता था कि अमेरिका के स्कूलों में गोलीबारी-चाकूबाजी की घटनाएं होती हैं, लेकिन पिछले कुछ महीनों में देश के कई हिस्सों में बच्चों में जिस तरह की हिंसक प्रवृत्ति देखने में आई है, उसने यह सोचने को मजबूर किया है कि बच्चे आखिर जा किस दिशा में रहे हैं। ऐसा ही रहा तो बच्चों का भविष्य क्या होगा! और साथ ही, हमारे समाज का क्या होगा! झकझोर देने वाला ताजा वाकया हरियाणा के यमुनानगर का है जहां एक स्कूल के छात्र ने अपनी प्राचार्य पर ताबड़तोड़ गोलियां बरसा कर उनकी जान ले ली।

उस दिन स्कूल में पीटीए (शिक्षक-अभिभावक बैठक) थी और यह छात्र इससे बचना चाहता था। कुछ **महीने** पहले गुरुग्राम के रेयान इंटरनेशनल स्कूल में हुए प्रद्युम्न ठाकुर **हत्याकांड** ने देश भर को हिला दिया था। इस वारदात का आरोपी भी स्कूल का ही छात्र था। उसने मासूम प्रद्युम्न को सिर्फ इसलिए मार डाला था, ताकि सबका ध्यान इस घटना पर चला जाए और परीक्षा तथा पीटीए टल जाए। स्तब्ध कर देने वाला यह सिलसिला यहीं नहीं थमा। लखनऊ के एक स्कूल में सिर्फ छुट्टी के लिए **ग्यारह** साल की एक छात्रा ने सात साल के एक बच्चे को चाकू मार दिया। सातवीं **कक्षा** की इस छात्रा को उम्मीद थी कि इस घटना को अंजाम देते ही स्कूल की छुट्टी हो जाएगी।इन वीभत्स घटनाओं के पीछे जो सबसे बड़ी और पहली वजह सामने आई है उससे स्पष्ट है **कि** ये सभी आरोपी बच्चे पीटीए और परीक्षा के खौफ से इस कदर ग्रस्त थे कि इससे मुक्ति पाने की चाह में वे गलत-सही का फर्क भुला बैठे। अपराध करने में भी उन्हें न संकोच हुआ न डर लगा। कुछ मामले में **बच्चों** के आपसी झगड़े हिंसक रूप ले लेते हैं। पर ये वाकये अलग तरह के थे। सवाल उठता है कि ऐसे में कोई क्या करे! स्कूल वालों की अपनी जिम्मेदारियां हैं, परिवार वालों की अपनी। पर हालात बता रहे हैं कि दोनों ही पक्ष इनके निर्वाह में पूरी तरह से नाकाम साबित हो रहे हैं। स्कूल प्रबंधन अक्सर ऐसी घटनाओं को दबाने **की** कोशिश में रहते हैं क्योंकि उन्हें बदनामी का डर रहता है। लखनऊ की घटना में ऐसा ही हुआ। घटना के एक दिन बाद पुलिस में मामला दर्ज हुआ।

बच्चों में हिंसा की इस समस्या की जड़ कहीं न कहीं उन्हेंमिल रहे परिवेश से जुड़ी है। ज्यादातर बच्चे घर और स्कूल, दोनों तरफ से पड़ने वाले मानसिक दबाव के शिकार हैं। **परीक्षा** में ज्यादा नंबर लाने, कैरियर बनाने, जल्द ही बहुत कुछ हासिल कर लेने जैसी प्रतियोगी भावना से वे खौफ और तनाव में आ जाते हैं। यह मानसिक परेशानी या तो उन्हें सिर्फ किताबी कीड़ा बना कर छोड़ देती है या राहत के लिए किसी भी हद तक ले जाती है। आज ज्यादातर स्कूली बच्चे मोबाइल और इंटरनेट की लत के शिकार हैं। उन्हें अपनी समस्याओं का समाधान इंटरनेट पर ज्यादा आसान नजर आता है और यहीं से उनके आत्म-केंद्रित और अकेलेपन के जीवन की शुरुआत होती है। यह ऐसी समस्या है जो **बच्चों** में कहीं न कहीं असुरक्षा की भावना भर रही है। और इसी से बाल मन हिंसा की ओर भाग रहा है। बच्चा बंदूक या चाकू का सहारा न ले, इसके लिए स्कूल प्रबंधन और अभिभावक का फर्ज बनता है कि वे बच्चे को दबाव तथा तनाव से मुक्त माहौल दें। सुरक्षा के **लिहाज** से पर्याप्त निगरानी भी रखी जाए।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 23-01-18

इस बार दावोस इतना अहम क्यों है

पुष्परंजन, संपादक, ईयू-एशिया न्यूज

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी विश्व आर्थिक फोरम के **उद्घाटन** के अवसर पर आज बीज वक्तव्य देंगे। वर्ल्ड **इकोनॉमिक** फोरम (डब्ल्यूईएफ) के ग्लोबल प्रमुख (प्रोग्रामिंग) ली हॉवेल ने एक पते की बात कही है कि 'इस बार सम्मेलन में आए शासन प्रमुख बोलें कम और लोगों की सुनें ज्यादा।' प्रधानमंत्री मोदी के बीज **वक्तव्य** से आरंभ इस पांच दिवसीय सम्मेलन का समापन **अमेरिकी** राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के भाषण से होगा। बीच में ब्रिटिश **प्रधानमंत्री** थेरेसा मे, फ्रांसीसी राष्ट्रपति एम्मैनुएल मैक्रों, इजरायल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू, जिम्बॉब्वे के नए नेता इमर्सन **म्नांगाग्वा**, ऑक्सफैम की डायरेक्टर विनी व्यापइमा, **शरणार्थियों** की आवाज बनीं काटे ब्लांचेट, अमेरिका के पूर्व उप-राष्ट्रपति अल गोर, इंटरनेशनल ट्रेड यूनियन कन्फेडरेशन की महासचिव शारोन बर्रो, और नोबेल विजेता मलाला युसूफजई बोलेंगी। सोचिए, इनमें से कौन कम बोलने वालों में से हैं, जो विश्व आर्थिक फोरम के **ग्लोबल** प्रमुख की नसीहत पर ध्यान देंगे?

इस आर्थिक महाकुंभ का मूल विषय कार्बन **मुक्त** अर्थव्यवस्था है, मगर दुनिया भर से जो एक हजार **प्राइवेट** जेट यहां उतरे हैं, उनसे स्विट्जरलैंड की स्वच्छ आबोहवा का क्या हाल हुआ है, यह गौर करने लायक बात है। उद्योगपतियों के साथ-साथ करीब 30 देशों के मजदूर संघों के नेता, सामाजिक आंदोलनों व **महिला** अधिकार समूहों के प्रतिनिधियों के जमावड़े से यूरोप के इस ऊंचे स्थान का हाल धरती पर स्वर्ग जैसा नहीं रह जाता है।मात्र 11,000 की आबादी वाले दावोस में उससे दोगुनी **जनसंख्या** पांच दिनों के लिए पहुंच जाएगी, ऐसी कल्पना 47 साल पहले नहीं की गई थी। साल 1971 में जेनेवा यूनिवर्सिटी में पढ़ा रहे **जर्मन** प्रोफेसर क्लाउस श्वाब ने सबसे पहले दावोस में 'यूरोपीयन मैनेजमेंट फोरम' की आधारशिला रखी थी। उस परिसंवाद में **पश्चिमी** यूरोप के 444 बिजनेस एग्जक्यूटिव आए थे। कालांतर में क्लाउस **श्वाब** ने इसका फलक अमेरिकन बिजनेस एग्जक्यूटिव के **लिए** भी खोला और देखते-देखते ही यह संस्था वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम (**डब्ल्यूईएफ**) में बदल गई। मगर क्या दावोस स्की रिजॉर्ट इस **आर्थिक** महाकुंभ के लिए अब छोटी नहीं पड़ने लगी? शायद, इस पर कभी सवाल उठे।

हर साल एक नए लक्ष्य के साथ डब्ल्यूईएफ की बैठक आगे बढ़ती रहती है। ठीक वैसे ही, जैसे स्कीइंग के खेल में पीछे मुड़कर देखना नहीं होता है। मगर क्या साल भर में उस लक्ष्य की पूर्ति हो जाती है? दावोस है भी स्कीइंग के लिए दुनिया भर में मशहूर। 2017 में डब्ल्यूईएफ को जब शी जिनपिंग संबोधित कर रहे थे, तब उनके विचारों से अमेरिकी सदर की टकराहट साफ-साफ दिखाई दे रही थी। शी का लक्ष्य 'वन बेल्ट वन रोड' की महत्वाकांक्षा को पूरा करना रहा है, वहीं ट्रंप चाहते हैं कि विश्व व्यापार को 'ट्रांस पैसेफिक पार्टनरशिप' की तरफ ले जाया जाए। शी 'वन बेल्ट वन रोड' की अपनी अवधारणा को मूर्त रूप देने के वास्ते 50 अरब डॉलर से अधिक राशि गला चुके हैं। 56 सदस्यीय 'एशियन इन्फ्रास्ट्रक्चर इन्वेस्टमेंट बैंक' को मजबूत करना शी का बड़ा एजेंडा है, जिसका मुख्यालय बीजिंग में है। मगर इस तरह के उद्देश्यों से अफ्रीका, सब-सहारा जैसे इलाकों का समान विकास संभव है?

साल भर में दुनिया में जो कुछ हुआ है, उससे विखंडन की स्थिति बनी है। पहले यूरोप सीरिया के कारण बड़े पैमाने पर घुसपैठ और शरणार्थी-समस्या को झेल रहा था, इस बार दक्षिण-पूर्व एशिया रोहिंग्या शरणार्थियों के कारण लगभग वैसी ही स्थिति से रूबरू है। यह दावोस में बहस का विषय हो सकता है। ट्रंप प्रशासन की ईरान और उत्तर कोरिया से जिस तरह से ठनी हुई है, उसने दावोस के मंच पर नाभिकीय संघर्ष से जुड़े विमर्श को दावत दे दिया है।अमूमन हर साल विश्व आर्थिक फोरम की बैठक से पहले 'ग्लोबल रिस्क रिपोर्ट' जारी की जाती है। 2018 की जो रिपोर्ट आई है, वह विगत वर्षों की तुलना में अधिक चिंताजनक है। यह रिपोर्ट चार प्रमुख खतरे की ओर इशारा करती है। इसमें पर्यावरणीय दुर्दशा, साइबर सुरक्षा में सेंध, आर्थिक उथल-पुथल, और भू-सामरिक तनाव का ऐसा चित्र उकेरा गया है, जैसा पिछले दस वर्षों में देखने को नहीं मिला। दोहा राउंड के लुढ़क जाने के बाद जिस तरह की स्थिति थी, उससे विकट हालात यदि 'ग्लोबल रिस्क रिपोर्ट' बता रही है, तो यह सचमुच दावोस सम्मेलन में भाग ले रहे महानुभावों के लिए बड़ी चुनौती है। विश्व नेताओं को इससे पार पाने का रास्ता बताना होगा।

यह संयोग है कि अमेरिकी राष्ट्रपति की तरह भारतीय प्रधानमंत्री भी बड़े अंतराल के बाद विश्व आर्थिक फोरम की बैठक में हिस्सा ले रहे हैं। साल 2000 में बिल क्लिंटन के बाद प्रेसिडेंट ट्रंप इसमें भाग ले रहे हैं, तो 21 साल बाद भारतीय प्रधानमंत्री। पीएम मोदी से पहले 1997 में तत्कालीन प्रधानमंत्री देवेगौड़ा दावोस गए थे। पीवी नरसिंह राव पहले प्रधानमंत्री थे, जो 1994 में दावोस गए थे। जॉर्ज डब्ल्यू बुश व बराक ओबामा की तरह वाजपेयी और मनमोहन सिंह विश्व आर्थिक फोरम की बैठक में नहीं गए। मगर इसका मतलब यह नहीं कि भारत का विश्व आर्थिक फोरम के लक्ष्यों से सरोकार नहीं है। इस बार प्रधानमंत्री मोदी, छह मंत्री, दो मुख्यमंत्रियों सहित 20 भारतीय कंपनियों के सीईओ, फिल्म स्टार शाहरुख खान के साथ शिरकत कर रहे हैं। दावोस में पीएम मोदी का मेगा शो है, जिसमें वह 120 सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल के साथ भाग ले रहे हैं।दावोस के इस आर्थिक महाकुंभ में प्रधानमंत्री मोदी करेंगे क्या, इस पर देश ही नहीं, उनके प्रतिस्पद्र्धी शी जिनपिंग की भी नजर है। आमतौर पर प्रधानमंत्री मोदी के विदेश दौरे का केंद्रीय विषय 'निवेश' होता है। 'मेक इन इंडिया' को प्रोत्साहित करने, 'स्किल इंडिया' के तहत भारत में कौशल हासिल कर चुके युवाओं को विदेश में काम के अवसर कैसे मिलें, यह भी प्रधानमंत्री की दावोस यात्रा का एजेंडा है। अगले साल आम चुनाव होने हैं। ऐसे में, दावोस जैसे मंच की उपलब्धियों को कोई भी प्रधानमंत्री अपनी घरेलू राजनीति में भुनाना चाहेगा। मगर 'ऑक्सफैम' ने इसी रविवार को सर्वे रिपोर्ट में जानकारी दी है कि 67 करोड़ भारतीयों की माली स्थिति में मात्र एक फीसदी का सुधार हुआ है। यह चिंताजनक बात है।

Date: 23-01-18

दावोस और असमानता

द गार्जियन, ब्रिटेन

फिट्जेराल्ड ने कहा था, 'अमीर, हम-आप जैसे नहीं होते हैं'। संपत्ति का नशा उन्हें यह एहसास कराता रहता है कि वे विशिष्ट हैं। दावोस में इकट्ठे हो रहे अरबपतियों और कॉरपोरेट प्रमुखों के संदर्भ में ये शब्द सही जान पड़ते हैं। ये धुरंधर असमानता और गरीबी को लेकर बड़ी आसानी से बातें करते हैं, लेकिन उनके बारे में शायद ही कभी सोचते हों, क्योंकि उन्हें लगता ही नहीं कि वह जमात उनके दीर्घकालिक हित-साधन में सहायक बन सकती है। दरअसल, यह ऐतिहासिक अनुपातिकता की गलती का मामला है। ऑक्सफैम की रिपोर्ट बताती है कि 2015 से सबसे अमीर एक प्रतिशत लोग बाकी सबकी अपेक्षा कहीं अधिक धनी होते गए हैं। दावोस में चाहे जैसी गरमा-गरम बहसें हों, किसी भी कंपनी का मुखिया यह स्वीकार नहीं करेगा कि करों से बचने के लिए वे क्या-क्या तिकड़म अजमाते हैं? कोई श्रमिक हितों के खिलाफ उठाए जाने वाले अपने कदमों या व्यापक जनहित में संतुलन बनाने वाले ट्रेड यूनियनों, श्रमिक हितों, पर्यावरण या गोपनीयता संबंधी कानूनों के खिलाफ लॉबिंग करने की बात भी स्वीकार नहीं करेगा।

पश्चिम के सबसे बडे कॉरपोरेशन और बैंकों के लिए पूरी दुनिया का आकाश खुला है। वित्तीय संकट की पुरानी यादें बताती हैं कि वे अब सरकारों पर निर्भर नहीं है। कॉरपोरेट दुनिया के लिए लॉबिंग करने वाले तो अब यहां तक कहने लगे हैं कि बाजार अब ऑटो-पायलट मोड पर जा चुका है, और सरकारें इसकी राह में बाधा डालती हैं, इसलिए उनसे बचना बेहतर है। असल में, सरकारों का काम निजी क्षेत्र को ढांचागत सुविधाएं उपलब्ध कराना है। संकट की स्थिति में वे बड़े कारोबारियों को उबारने का काम करती हैं। जब-जब सरकारों ने बेल आउट या अन्य ऐसे कदम उठाए, तो उससे अमूमन धनी ही ज्यादा धनी होते गए, बजाय इसके कि जरूरतमंदों को इसका लाभ मिला हो। बदलते हालात में विश्व को कुछ अलग सोचने की जरूरत है। धनिकों को अपनी सोच बदलकर सामाजिक जिम्मेदारी की ओर देखना होगा। वरना बढ़ती असमानता ज्यादा से ज्यादा लोगों को डराएगी। और यह लोकतंत्र के लिए किसी विनाश से कम नहीं होगा।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 23-01-18

Nurturing excellence

State should rope in scholars with a record in building centres of learning to helm 'Institutions of Eminence'

Ramachandra Guha (The writer is a historian based in Bengaluru)

Last August, the Union government invited universities across India to apply to be chosen as "Institutions of Eminence". Successful applicants would be exempted from the oversight of the babus of the University Grants Commission; and provided a handsome subsidy of Rs 1,000 crore each. The idea was to nurture Indian universities fit to be placed in the "top five hundred of any world renowned ranking frameworks (such as the Times Higher Education World University Rankings)".

When I was a student in the 1970s, these world rankings did not exist. Had they, my alma mater, the University of Delhi, would have figured in them. In that decade, the DU economics department included such outstanding scholars as Jagdish Bhagwati, Sukhamoy Chakravarty, A L Nagar and Amartya Sen. The sociology department was also world-class; with André Béteille and M N Srinivas, among others. The chemistry department included a Fellow of the Royal Society, T R Seshadri; the physics department had R. Rajaraman, a brilliant theorist who had taken his Ph D with the great Hans Bethe. The law and history faculties also had professors as good as any in England or America; while in the realm of the arts we had the celebrated classical violinist T N Krishnan.

In the 1970s, Chinese universities had been destroyed by the Cultural Revolution. The universities in South Korea and Singapore were utterly mediocre. Those in Japan were constrained by their lack of English proficiency. If rating agencies like THES or QS had existed then, Delhi University would certainly have figured in the top 500, perhaps the top 200, in the world. And it would have been among the top five universities in Asia.Now, in the second decade of the 21st century, the University of Delhi does not find a place in the world's top 500 universities. Two desi institutions do: The Indian Institute of Science (placed in the low 200s) and IIT Bombay (in the low 300s). Many Chinese and Korean universities rank higher than them, which would not have been the case in the 1970s and 1980s.

In recent decades, while public universities in other Asian countries have perceptively improved, those in India have noticeably declined. The principal reasons are: The elevation of quantity over quality; the contempt for scholarship and research among our political and bureaucratic elite and the fact that the choice of vice-chancellors and IIT directors is not left to academics themselves but directed by political calculations. The autonomy of our leading educational institutions has been gravely corroded over the years by both Congress and BJP regimes, and by Third Front governments too, with the HRD ministers of

all parties seeking to place, at the head of universities and research institutes, their own protéges rather than those best qualified for the job.

As I argued in an essay in the Economic and Political Weekly, the best universities practise five kinds of pluralism: (i) They offer undergraduate and graduate courses in diverse disciplines, (ii) they expose students to different theoretical frameworks in each discipline, (iii) they recruit faculty from across the country and from all social groups, (iv) they attract students of diverse backgrounds, (v) they attract private as well as public funding. In India, however, these noble ideals are undermined by varieties of parochialism: By the catchment area of faculty and students being restricted to a single city or state; by professors imposing their own intellectual frameworks on students rather than exposing them to competing theoretical approaches; by the pressures of identity politics; by excessive dependence on state funding.In the 21st century, more than ever, knowledge shall be the key to economic and social progress. That is why we should welcome the government's "Institutions of Eminence" scheme. The interest it has generated is widespread; indeed, as many as one hundred institutions have applied for the tag, including seven IITs, DU, IISc, as well as new private universities such as Ashoka. Each applicant has submitted a 15-year "vision plan" — sometimes running into thousands of pages — explaining how it shall break into the list of the top 500 universities in the world.

From this large pool, 20 institutions — 10 public, 10 private — will be chosen by a so-called "Empowered Experts Committee". Although the government has not yet announced the committee's members, the Gazette notification said they "will be reputed and credible individuals who have contributed to education, other public issues, economic growth and social development for a minimum period of ten years. They should have had an exceptional and untarnished record in their respective fields of excellence, and an incontrovertible and demonstrated commitment to public causes".These are sweet phrases, but for this Expert Committee to indeed be credible it must have real, independent, experts in the field of education and research. This government's previous appointments in this sphere — from the HRD ministers appointed by Prime Minister Narendra Modi to the heads of various bodies appointed in turn by these ministers — do not inspire much confidence. But perhaps this new committee will indeed be different.

With that hope, let me suggest some suitable names, drawing on four decades of working with universities and research institutes across India. There can be no better chair for this committee than K VijayRaghavan, currently secretary in the Department of Biotechnology, formerly director of the National Centre for Biological Sciences, a world-class scientist as well as outstanding administrator. Other scientists in the committee could be the physicist Sriram Ramaswamy and the computer scientist Sanghamitra Bandyopadhyaya. From the humanities, I would nominate the political scientist Niraja Gopal Jayal, the literary scholar Supriya Chaudhuri, and the jurist N R Madhava Menon (who founded the famous National Law School in Bangalore).These individuals (whom the reader can Google for more details) are all top-rate intellectuals who have built fine centres of teaching and research in India. They come from all parts of the country. And they are all unconnected to the Congress, the CPI(M), the BJP, or the RSS.My mentioning these names may veto them all in the eyes of the present regime. So perhaps the government can come up with even better names. The idea of having these Institutions of Excellence is excellent in itself; however, its credibility shall rest on the manner in which the "Empowered Experts Committee" is constituted and goes about its work. Serious scholars who have themselves nurtured institutions of quality are far better qualified than party hacks or career bureaucrats to judge which Indian universities do (and do not) have the potential to become world-class.